

• श्री वीरुहनीराज्ञी जयतः •

स वे पूर्सो परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः सुचतुर्थितः पूर्सो विद्वक्षेत्न कवचम् ।

नोरेपादपेदं पर्व रति अम एव हि केवलम् ।



अहैतुवयप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विद्वनशून्य अर्थात् मंगलदायक ॥

तब धर्मों का ऐह रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अम व्यर्थं सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १४ } गोराव्द ४८२, मास—केशव ११, चार—क्षीरोदशायी { संख्या ६
} शनिवार, ३० कार्तिक, सम्वत् २०२५, १६ नवम्बर १९६८

श्रीराधिकाष्टोत्तरशत नाम-स्तोत्रम्

(श्रीश्रील रघुनाथदास गोस्वामि विरचितम्)

पुञ्जीभूतजगल्लज्जा वेदग्नीदिग्धविग्रहा ।

करुणाविद्रवददेहा मूर्तिमःमाधुरीघटा ॥२६॥

६६. पुञ्जीभूतजगल्लज्जा वेदग्नीदिग्धविग्रहा अर्थात् एकत्रीभूत जगन्मंडली की
लज्जारूपी विदग्धता (सुचतुरता) जिनके विग्रहको लिप्त लिये हुए हैं, ६७. करुणा-
विद्रवददेहा अर्थात् करुणादि गुण समूह द्वारा जिनका शरीर द्रवीभूत होता है और
६८. मूर्तिमन्माधुरीघटा अर्थात् जिनकी माधुर्यघटा मूर्तिमती रूपसे है ॥२६॥

जगद्गुणवतीवर्गंगीयमानगुणोच्चया ।

शक्यादि सुभगावृन्दवन्द्यमानोरुहसौभगा ॥२७॥

६६. जगद्गुणवतीबर्गंगीयमानगुणोच्चया अर्थात् जगद्वकी गुणवती खियाँ जिनकी गुणराशिका बारम्बार कीर्तन करती रहती हैं, ७०. शच्यादिसुभगा वृन्दवन्द्यमानोरुसीभगा अर्थात् शची (इन्द्रपत्नी) आदि जगतमें परम सीभाग्यशालिनी खियाँ इन राखिका के सबंधेषु सीभाग्यकी बारम्बार बन्दना करती रहती हैं ॥२७॥

बीणावादनसंगीत रासलास्यविशारदा ।

नारदप्रमुखोद्गीत जगदानन्दिसद्यशाः ॥२८॥

७१. बीणावादनसंगीत रासलास्यविशारदा अर्थात् बीणावादा, संगीत और रास-नृत्य आदि कलाओंमें जो परम सुन्दर और सुनिपुणा हैं, ७२. नारदप्रमुखोद्गीतजगदानन्दिसद्यशा अर्थात् नारदादि मुनिगण जिनके जगदानन्ददायक सद्यशका गान करते रहते हैं ॥२८॥

गोवद्धनगुहागेहगृहणी कुञ्जमण्डना ।

चण्डांशुनन्दिनीबद्ध भगिनीभावविभ्रमा ॥२९॥

गोवद्धनगुहागेहगृहणी अर्थात् जो गोवद्धन गिरिमें स्थित श्रीकृष्णकी गृहणी हैं, ७४. कुंजमण्डना अर्थात् जिनके गमनसे कुंजगृहकी शोभा बढ़ती है, ७५. चण्डांशुनन्दिनी-बद्धभगिनीभावविभ्रमा अर्थात् सूर्यनन्दिनी यमुनादेवीके प्रति जिनका भगिनी भाव जैसा भ्रम होने लगता है ॥२९॥

दिव्यकुन्दलता नर्मसस्यदामविभूषिता ।

गोवद्धनधराह्लादि शृङ्गाररसपण्डिता ॥३०॥

७६. दिव्य कुन्दलतानर्मसस्यदामविभूषिता अर्थात् कुन्दलताकी सुन्दर नर्मसखी-द्वयरूप दाम (रससी) द्वारा जो भूषिता हैं, ७७. गोवद्धनधराह्लादि शृङ्गाररसपण्डिता अर्थात् गोवद्धनधारी श्रीकृष्णको अतिशय आनन्ददायक शृङ्गाररसमें जो सुपण्डिता है ॥३०॥

गिरीन्द्रधरवक्षःश्रीः शंखचूडारिजीवनम् ।

गोकुलेन्द्रसुतप्रेम कामभूपेन्द्रपत्नम् ॥३१॥

७८. गिरीन्द्रधरवक्षःश्री अर्थात् जो गोवद्धनधारी श्रीकृष्णके वक्षस्थल में अतिशय शोभालूपा हैं अर्थात् लक्ष्मीलूपा हैं, ७९. शङ्खचूडारिजीवनम् अर्थात् जो शंखचूडारि श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं, ८०. गोकुलेन्द्रसुतप्रेम कामभूपेन्द्रपत्तनम् अर्थात् गोकुलेन्द्र नन्द महाराजके पुत्र श्रीकृष्णके प्रेमयुक्त कन्दपंशराजाके जो निवास स्थान हैं ॥ १॥

वृषविघ्वंसनमोक्ति स्वनिर्मितसरोवरा ।

निजकुण्डजलक्रीडाजित संज्ञेणानुजा ॥३२॥

८१. वृषविघ्वंसनमोक्ति स्वनिर्मितसरोवरा अर्थात् वृषभासुरका वध करनेवाले श्रीकृष्णकी नमोक्ति (मधुर वचन) द्वारा जो आत्मामें (अपने शरीरमें) सात्त्विक भावसूचक स्वेदसरोवर निर्माण की हुई हैं, ८२. निजकुण्डजलक्रीडाजित संकर्षणानुजा अर्थात् निजकुण्डमें (राधाकुण्डमें) जलक्रीडामें बलदेवके छोटे भाई श्रीकृष्णको भी जिन्होंने पराजित कर दिया है ॥३२॥

मुरमद्दनमत्तेभ विहारामृतदीधिका ।

गिरीन्द्रधर पारीन्द्ररतियुद्धोरुसिंहिका ॥३३॥

८३. मुरमद्दनमत्तेभ विहारामृतदीधिका अर्थात् मुरमद्दन श्रीकृष्णरूप मत्तहस्ति की जलक्रीडाके लिए जो अमृत सरोवरके समान हैं, ८४. गिरीन्द्रधरपारीन्द्ररतियुद्धोरुसिंहिका अर्थात् गिरिराज गोवद्धनधारी श्रीकृष्णरूप पारीन्द्र (सिंह) के रति युद्धमें जो सिंहिका स्वरूपा हैं ॥३३॥

स्वतनुसौरभोन्मत्तीकृत मोहनमाधवा ।

दोमूलोच्चालनक्रीडा व्याकुलीकृतकेशवा ॥३४॥

८५. स्वतनुसौरभोन्मत्तीकृतमोहनमाधवा अर्थात् सारे जगतको मोहित करनेवाले माधवको भी जो अपने शरीरके सुगन्धसे उन्मत्त करती हैं, ८६. दोमूलोच्चालनक्रीडाव्याकुलीकृतकेशवा अर्थात् अपने बाहुमूलके संचालन क्रीडा द्वारा केशव (कृष्ण) को भी व्याकुल कर देती हैं ॥३४॥

निजकुण्डतटीकुञ्ज बलूपकेलिकलोद्यमा ।

विव्यमलिलकुलोल्लासि शश्याकलिपतविग्रहा ॥३५॥

६७. निजकुण्डतटीकुंज बलमूँहलिकलोचमा अर्थात् राधाकुण्डके तटमें स्थित कुंजमें जो अपनी केलिकला का उद्यम विस्तार करती है, ६८. दिव्यमलिलकुलोहलासि शश्याकल्पतविग्रहा अर्थात् दिव्य मलिलका तुष्णों द्वारा सुशोभित अत्यन्त सुन्दर शश्या में जिन्होंने अपने सुन्दर सुकोमल शरीरको स्थापित किए हुए लेटी हुई हैं ॥३५॥

कृष्णवामभुजन्यस्त चारुदक्षिणगण्डका ।

सव्यबाहुलताबद्ध कृष्णदक्षिणसदभूजा ॥३६॥

६९. कृष्णवामभुजन्यस्त चारुदक्षिणगण्डका अर्थात् जो अपने सुचारु (अत्यन्त मनोहर) दक्षिण गण्डस्थल (कपोल) को श्रीकृष्णके बाएँ हाथके ऊपर अपेण की हुई हैं, ६०. सव्यबाहुलताबद्धकृष्णदक्षिणसदभूजा अर्थात् जिन्होंने अपने बाएँ हाथ द्वारा श्रीकृष्णके दक्षिण हाथको बढ़कर (पकड़कर) रखी हुई हैं ॥३६॥

कृष्णदक्षिण चारुरुश्लिष्ट बामोहरमिभका ।

गिरीन्द्रधर धृग्वक्षोमर्दि सुस्तनपर्वता ॥३७॥

६१. कृष्णदक्षिणचारुरुश्लिष्ट बामोहरमिभका अर्थात् श्रीकृष्णके मनोहर दक्षिण उरु (जंघा) द्वारा जिनका बान उरु (बाँया जंघा) अबरुद्ध हुआ है, ६२. गिरीन्द्रधर धृग्वक्षोमर्दि सुस्तनपर्वता अर्थात् गोबद्धनधारी श्रीकृष्णके विशाल वक्षःस्थलमें जिनके दोनों स्तनपर्वत मर्दित हो रहे हैं ॥३७॥

गोविन्दाधर पीयुषवासिताधरपल्लवा ।

सुधासंचयचारुक्ति शीतलीकृतमाधवा ॥३८॥

६३. गोविन्दाधरपीयुषवासिताधरपल्लवा अर्थात् गोविन्दकी अधरामृतहारा जिनका अधरपल्लव सुवासित हो रहा है, ६४. सुधासंचयचारुक्ति शीतलीकृतमाधवा अर्थात् जो अपनी सुधाराशिके समान सुन्दर मनोहर बाक्योंद्वारा श्रीकृष्णको सुशीतल कर देती है ॥३८॥

गोविन्दोदगीर्ण ताम्बूलरागरज्यतकपोलिका ।

कृष्णसंभोगसफलीकृत मन्मथसंभवा ॥३९॥

६५. गोविन्दोदगीणं ताम्बूलरागरज्यतकपोलिका अर्थात् जिनके दोनों गण्डस्थल
श्रीकृष्णचर्चित ताम्बूल द्वारा सुरंजित हुए हैं, ६६. कृष्णसंभोगसफलीकृतमन्मथसंभवा
अर्थात् जिन्होंने श्रीकृष्णके साथ संभोग अनुभव कर मन्मथ (कामदेव) को सफल कर
दिया है ॥३६॥

(क्रमशः)

सूत्र-विद्वेष

यद्यपि हमें ग्राम्य (सांसारिक) समाचार पत्रादि पढ़नेका अभ्यास, या समय नहीं है, तथापि दूसरोंकी आवश्यकताके लिए या समाज कल्याणके लिए हम लोग बाध्य होकर बीच-बीचमें सांसारिक साहित्य और विलासी एवं भोगपरायण सामाजिक व्यक्तियोंकी बातें आलोचना करते हैं। जड़ सांसारिक साहित्य-समाज या वृद्धा प्रजल्य करनेवाले साहित्यिक व्यक्तियोंकी इन्द्रियतंपणपरायण धृणित और तुच्छ बातोंमें प्रवेश करना हमारा उद्देश्य नहीं है। कोई कह सकता है कि ऐसी चेष्टा तृणादपि सुनीचता और तरोरपि सहिष्णुता होनेमें वाधा प्रदान करती है। किन्तु हम लोग वैदिक सनातन धर्मके प्रचारक होनेके कारण आत्मधर्मपरायण व्यक्तियोंके ऊपर आत्मधर्मसे अपरिचित व्यक्तिके अत्याचार और अनधिकृत कटाक्षको स्थान नहीं दे सकते। ऐसे उपहास और अत्याचार द्वारा मनुष्य अत्यन्त भयङ्कर और तामसिक भोग विलासादि में मदमत्त हो जाता है; उन बातोंकी आलोचना

करने पर सांसारिक व्यक्ति हमें कहा करते हैं कि यदि नीच व्यक्ति अपनी योग्यतासे अधिक बातें करते हैं, तो उन्नत और बुद्धिमान व्यक्ति उनकी बातोंको हँसकर उड़ा देते हैं। आप लोग भी ऐसा क्या नहीं करते ? पागल क्या नहीं बकता, बकरा क्या नहीं खाता ? ऐसी सूक्ष्म बुद्धियुक्त होकर असम्भाष्य और असमालोच्य नीच व्यक्तियोंकी मायिक चेष्टाको प्रतिरोध करने की क्या आवश्यकता है ? इसलिए आप लोगों के लिए ऐसे कार्यसे दूर रहनेमें ही भलाई है। इस कथनके उत्तरमें हमारा कहना है कि जब अदरक के व्यापारीको जहाजका अनुसन्धान नहीं है, तब अपनी धुद्र पूँजी लेकर बड़े सौदागरसे प्रतियोगिता न करनेमें ही उसकी भलाई है। अर्थात् जब परमार्थसे अपरिचित व्यक्तियोंको परमार्थ का कोई अनुसन्धान नहीं है, तब उनके लिए भलाई इसीमें है कि वे परमार्थपरायण व्यक्तियों के साथ अनावश्यक रूपसे प्रतियोगिता न करें।

चीटी की सी ताकत लेकर हाथीके बैरों द्वारा रोदा जाना मूर्खताका चरम परिचय है। सांसारिक साहित्य और सांसारिक समाजका हित चाहनेवाले व्यक्तियोंकी तुच्छ विषय कथाओं के साथ प्रकृतिसे अतीत अपोरुष्य (अमानुषिक) सत्यके शब्दण करनेवाले वैष्णवोंके व्यवहारकी तुलना या आलोचना करना असीम दुःसाहस्र और धृष्टिका परिचयमात्र है।

“भारतवर्ष” नामक एक सामाजिक साहित्य पत्रिकामें ‘अकाल मृत्यु और बास-विवाह’ नामक एक प्रबन्ध निकला है। उसके प्रति हमारे कोई परम अद्वालु व्यक्तिने हमारी दृष्टिका आकर्षण किया है और उसकी समालोचना करनेका अनुरोध किया है। सांसारिक रसिक व्यक्तियोंके साथ हम लोग बातें करनेके इच्छुक नहीं हैं, अतएव उनसे हमने इस बातकी उपेक्षा करनेके लिए कहा। उसके पश्चात् दूसरे एक बन्धुने “भारतवर्ष” पत्रिकामें लिखित प्रबन्धको पाठ करने और समालोचना करनेके लिए हमसे अनुरोध किया। और एक तीसरे बन्धुने भी हमसे ये बातें कहीं। तब हम लोगोंने बात्य होकर बारम्बार अनुरोध करनेके कारण इस प्रसङ्गमें कुछ बातें कहनेकी आवश्यकता समझी। विशेषकर आत्मविद् व्यक्तियोंके ऊपर अनधिकृत अत्याचार दीख पड़ें, तो वेद शास्त्रोंके अनुसार हमें तीन प्रकारके मार्गोंका अवलम्बन करना चाहिए। पहला तो यह है कि भक्तविद्वेषी जड़न्द्रियपरायण मदमत्त व्यक्तिका जीभ काट लें।

ऐसा करने पर उसके प्रति कृपा होगी। दूसरा रास्ता यह है कि वैष्णव विद्वेष या निन्दा सुन कर अपने प्राणोंका परित्याग करना या चिरकालके लिए ईश्वर विश्वासरहित होकर नास्तिक हो जाना। दूसरे मार्गका पहला अंश आत्महृत्या है, अतएव वह अत्यन्त धृणित कर्म है। दूसरा अंश उससे और भी अधिक धृणित है। पहले मार्गका पहला अंश हिसायुक्त है; किन्तु वह हिसा साधारण व्यक्तियोंकी हिसाकी तरह नहीं है। अर्थात् ऐसे मूर्ख व्यक्तियोंको भविष्य में वैष्णव विद्वेष करने नहीं देना चाहिए या राजद्वारमें प्रतिकार प्रार्थना कर समाजसे अहिभूत करने योग्य व्यक्तियोंको करारागारमें डाल देना चाहिए। तीसरा मार्ग यह है कि उस स्थानका परित्याग करना। इन तीनों मार्गोंके अवलम्बन करने पर ही प्रकृत आत्मविद् व्यक्ति इन्द्रियपरायण जड़रस मदमत्त साहित्यकारोंकी कपटता और कपटतायुक्त समाजहितेषी व्यक्तियोंकी परिवर्तनशीलतायुक्त ग्रक्षज (प्राकृत) ज्ञानसे छुटकारा प्राप्त करते हैं। इसलिए दुःसङ्ग सब वास्तविक परित्याग करने योग्य है।

जहाँ महान व्यक्तियोंकी निन्दा हो, उस स्थान का कोई भी व्यक्ति परित्याग कर सकता है; किन्तु आत्मज्ञानी व्यक्ति जीवोंके प्रति दयायुक्त होनेके कारण विद्वत् मनुष्य समाजमें सत्य का प्रकाश करना ही अपना परम धर्म जानते हैं। ईसाईयोंके धर्मके दस आज्ञाओंमें से सत्यकी मर्यादा रखना भी एक आज्ञा है। भूठ बोलने-

वाले व्यक्तियोंके शासनके लिए भारतीय दण्ड-विधानमें कानून बनाया गया है। मूर्ख लोग किसी विषयका ज्ञान नहीं रखते या कानून अथवा विधि का ज्ञान उनमें नहीं होता; इसलिए वे लोग दण्डनीय नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। मैं कानून नहीं जानता अथवा सौप द्वारा काटे जाने पर वह बस्तु सौप नहीं है, ऐसा सोचकर बठे रहनेसे ही देश-विधि, कानून या सौपका विष मुझे कमंफलसे छुटकारा नहीं दे सकता। मैं मूर्ख हूँ अतएव मैंने समझनेमें गलती की है—ऐसा कहकर अनुताप करने पर वैष्णव-विद्वेषी व्यक्ति का दोष थोड़ा बहुत कम हो जाता है। किन्तु उसके द्वारा किया गया पापाचरण या असत्य आचरण जगतमें बहुत प्रकारके अन्योंको पैदा करता है। इसलिए साधु लोगोंको कर्तव्य है कि वे पापी व्यक्ति और साधारण व्यक्तियोंकी भविष्यमें होने वाले पापोंसे रक्षा करें। बहुतसे व्यक्ति खूब सरलताके साथ अनायास ही कह सकते हैं कि कृत्ते न समझकर भोकते रहें; उससे आप लोगों की गम्भीरतामें क्या हानि होती है? आप लोग वैष्णव हैं, अतएव आप लोग सहनशील हैं। इस कथनके उत्तरमें हमारा कहना है कि वैष्णव न होनेके कारण ही हम लोग धर्महनशील हो गये हैं। वैष्णव लोग ही एकमात्र

सहिष्णु हैं, इस बातको हम लोग भली प्रकारसे जानते हैं। ऐसे सहिष्णु वैष्णवोंके पादत्राणवाही होकर हम लोग अपने जीवनका बचा हुआ समय बिताना चाहते हैं। जब कोई व्यक्ति वैष्णवोंके जूतेको छीनकर उन्हें पादत्राण-विहीन या नंगे पैर करनेको चेष्टा करें, तब ऐसे व्यक्तिको समुचित दण्ड और शिक्षा देकर उसके हाथसे उस जूतेको छीन लेना चाहिए। ऐसा करना ही असंख्य युक्तियोंके विरुद्ध वैष्णव पूजा या सेवा है। यद्यपि द्वापरयुग बीत गया है, और कलियुगमें द्वापर युगके उपयुक्त परिचर्या-पूजा आदि फलदायक नहीं हैं, तथापि असंख्य जन्मोंके वैष्णवाचर्चनके प्रभावसे हम लोग भी एक दिन हरिभजनपरायण व्यक्तियोंके पादत्राणवाही बनेंगे। इसलिए महाजनों द्वारा कहा गया है—

कर्मविलम्बकाः केचित् केचित् ज्ञानावलम्बकाः ।

यदंतु हरिवासानां पादत्राणावलम्बकाः ॥

अथर्तु कोई कर्मका अवलम्बन करते हैं, और कोई ज्ञानका; किन्तु हम लोग हरिदासोंके (भगवद् भक्तोंके) पादत्राण या जूता बहन करनेवाले हैं।

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

श्रीचैतन्य शिक्षासूत्र

षष्ठि-तृतीयधारा

[वर्ष १४, संख्या ५, पृष्ठ ६७ से आगे]

प्रेमाधिकारके भेदसे नाम-भजनका विचार

प्रेम ही जीवका प्रयोजन-तत्त्व है। भाव-जीवन पूष्ट होनेपर प्रेम जीवन होता है। जीव सौभाग्यवश कृष्णोन्मुख होकर ऊपर उठते-उठते क्रमशः प्रेम-मन्दिरमें उपस्थित होता है। अतएव प्रेमाधिकारमें दो अवस्थाएँ होती हैं—(१) प्रेमारुक्तु और (२) प्रेमारुढ़ अवस्था। प्रेमारुढ़ (प्रेम प्राप्त) अवस्था ही सर्वोच्च अवस्था है। इसमें ऊँचों कोई दूसरी अवस्था नहीं है। वहाँ अखण्ड-कृष्णरस ही एक अद्वयतत्त्व है। आरुक्तु (साधक) अवस्थामें भक्तगण विविक्तानन्द और गोष्ठानन्द भेदसे दो प्रकारके होते हैं। निर्जन-स्थानमें अकेले भजन करनेवालेको विविक्तानन्दी और बहुतसे एकजातीय भक्तगण संघबद्ध होकर भजन करनेवालोंको गोष्ठानन्दी कहते हैं।

विविक्तानन्दी आचारप्रिय होते हैं। गोष्ठानन्दी सर्वदा प्रचार-प्रिय होते हैं। उनमेंसे कोई-कोई भजनप्रिय और आचारप्रिय दोनों ही होते हैं (क)। भगवत्स्मरण ही प्रेमभक्तका आचार है। भगवन्नामका कीर्तन करना ही प्रेम भक्तका प्रचार कार्य है।

आरुक्तु अवस्थामें प्रेम भक्तगण एकान्त कृष्णभक्त होते हैं। उनका साधारण लक्षण है—अनन्य शरणागतिका होना (ख)। श्रीमद्भागवत और गीतामें अनन्य शरणागत भक्तोंका माहात्म्य बतलाया गया है। दिना अनन्य शरणागत हुए प्रेमप्राप्तिकी तो बात अलग रहे, भाव भी उदित नहीं होता। अनन्य शरणागत साधकोंको केवल प्रेमभक्तिके अनुकूल विषयों या वस्तुओंको ही

(क) हरिदाम ठाकुर सनातन प्रभुको कहते हैं—

आपने आचरे केह ना करे प्रचार। प्रचार करेन केह ना करेन आचार ॥

आचार-प्रचार नामेर करह दुई कार्ये। तुमि सर्वगुह तुमि जगतेर आर्ये ॥

(चै. च. अन्य)

(ख) सर्वधर्मान् परेऽपञ्च मामिहं शरणं व्रज । अहं तो सर्वारोम्यो मोक्षविद्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८।६६)

मामेकमेव शरणमात्मनं सर्वदेहिनाम् । याहि सर्वाहम्यमावेन यथा स्याह्याकुतोभयः ॥

(भा. ११।१२।१५)

ग्रहण करना चाहिये । साथ ही उन्हें प्रेम-भक्तिके प्रतिकूल विषयोंका सर्वथा वर्जन करना चाहिये । कृष्ण ही एकमात्र रक्षाकर्ता है, उनको छोड़कर कोई भी दूसरा रक्षाकर्ता नहीं है अर्थवा किसी भी दूसरे कार्य द्वारा रक्षा नहीं हो सकती—अनन्य भक्तोंका ऐसा इड़ विश्वास होता है । कृष्ण ही हमारे एकमात्र पालनकर्ता है—इस विषयमें उनको किमी प्रकारका सन्देह नहीं रहता । मैं अतिशय दीन-हीन हूँ—ऐसे सुहड़ और सरल विश्वास अनन्यभक्तोंका होता है । मैं कृष्ण भी नहीं कर सकता, कृष्णकी इच्छा बिना कोई भी कृष्ण भी नहीं कर सकता—अनन्यभक्तों को ऐसा विश्वास रहता है । १

श्रीहरिनामका अनन्यभाव से आश्रय-ग्रहण

अनन्य शरणागत भक्त भक्तिके समस्त अङ्गोंमें से श्रीनामका अनन्यभावसे आश्रय ग्रहण

करते हैं । श्रीनामके स्मरण और कीर्तनमें ही उनकी अधिक रुचि होती है^२ । भगवन्नाम जैसे विशुद्ध चिन्मय है, वैसे अन्य भजनाङ्ग सहज-रूपसे नहीं होते । श्रीहरिभक्तिविलासमें भक्तोंके ऐकान्तिक कृत्यके प्रसंगमें नाम-स्मरण और नाम-कीर्तनका सबसे अधिक माहात्म्य वर्णन किया गया है^३ । शास्त्रोंमें नाम और नामीको अभिन्न बतलाया गया है । नाम चिन्तामणि हैं । कृष्णके चैतन्यरसके विग्रहके रूपमें श्रीनाम का उदय हुआ है^४ ।

श्रीनामका स्वरूप ज्ञान ही भजनोन्नतिका देतु है

जो लोग कृष्ण-स्वरूप और श्रीनाम-स्वरूप का अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, उन लोगोंको चित्तस्वरूपका अनुभव करने लिए प्रयत्न करना चाहिए । जब तक चित् तत्त्वके स्वरूपकी अनुभूति नहीं हो जाती, तब तक साधक भजनमें

१. आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्राप्तिकूल्यस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरर्णं तथा ॥

आत्मनिषेषकार्याण्ये यड़ विद्या शरणागतिः ॥ (पद्मपुराण)

तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन् । तत्स्थानमाधितस्तम्बा मोदते शरणागतः ॥

(पद्मपुराण)

२. गर्भं-जन्म-जरा-रोग-दुःख-संसार-बन्धनेः । न चाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुस्मरेत् ॥

३. ग्रन्थमेकान्तिनां प्रायः कीर्तनं स्मरणं प्रभोः । कुर्वतां परमप्रीत्या कृत्यमन्यप्ररोचते ॥

भावेन केनचित् प्रेषुश्रीमूर्तीरडिघ्सेवने । स्यादिच्छेषां स्वतंत्रेण स्वरसे नैव तदिदिः ॥

विहृतेऽन्वेष नित्येषु प्रवत्तन्ते स्वयं हि ते ॥ (पद्मपुराण)

४. नामचित्तस्तामणिः कृष्णनैतन्यरस विग्रहः । पूर्णः गुदो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वात्रामनामिनोः ॥

(पद्मपुराण)

कुशल नहीं हो सकता । इसलिए साधनका फल जो साध्यवस्तुका प्राप्ति है, वह केंद्र हो सकती है ? चित् तत्त्वके स्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ही भजनोन्नतिका एकमात्र हेतु है । यही इसी विषयमें कुछ विचार किया जा रहा है ।

जीव चित्करण है, कृष्णधाम चित् जगत् है, कृष्ण चित् सूर्य है, कृष्ण-भक्ति चित् प्रवृत्ति है तथा कृष्णनाम चित्सविग्रह है—ऐसा हमने इससे पूर्व अनेकों स्थानोंपर उल्लेख किया है तथा उनकी प्रामाणिकताकी प्रतिष्ठाके लिए विभिन्न शास्त्रोंसे इनोकादिकी अवतारणा भी की है । अब प्रैमारुद्धु महात्माओंके साथ चित् तत्त्वकी घोड़ी-बहुत आलोचना करके आत्मप्रसाद प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं । यदि हमारी पूर्वसुकृति होगी, तो हृदयमें चित्सुख का उदय होगा । चित्मात्र-उपलब्धिरूप ज्ञानमें हमारी तनिक भी रुचि नहीं; वयोकि उसमें चिद् वस्तुका किया-विलास नहीं है ।

१. जानतः सुलभा मुक्तिभुञ्जियंज्ञादि पुण्यतः । सेवं साधनसाहस्रं हंरिभक्तिः सुदुर्लभा ॥ (तन्त्र)

२. या निवृत्तिस्तानुभृतां तत्र पादपद्माद्यानादभवज्ज्वलकयाश्वरणेन वा स्थात् ।

सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाभ माभूत् किम्वान्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥

३. यथामने धूद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति एवमेवामादामनः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति ।

तस्य वा एनम्य पुरुषस्य है एव स्थाने भवतः, इदत्वं परमोक्तस्थानच्च सन्देशं तृतीयं स्वम् ।

४. दिव्ये पुरे ज्ञेप संव्योम्यात्मा प्रतिष्ठितः । (मुण्डक)

५. सर्वर्यगच्छुकमकायमवरणमस्त्वाविरं शुद्धमपापरिद्धम् ॥

कविमंतीर्णि परिभूः स्वयम्भूर्यथात्थतोऽर्थात् व्यदशाद्याद्यतीयः समाधयः ॥

(वृहदारण्यक २।१।२०)

(ईशोपनिषद्)

दसम् ग्रन्थ

कलियुग पावनावतारी श्रीचंतन्यमहाप्रभुजी ने वेदको प्रमाण माना है तथा उसमें नौ प्रमेयों को दिखलाया है । श्रीमद्भागवतमें विस्तार-पूर्वक इस विषयका वरण उपलब्ध होता है । जीव चित् करा है—यह वेदके प्रमाणसे सिद्ध है । कृष्णरूप सूर्यके किरण-करण होनेसे जीवों का चित्करणस्व निर्दिष्ट है । कृष्ण और जीव दोनों ही वस्तुतः चित्स्वरूपवाले हैं । फिर भी दोनों में कुछ भेद भी है । भेद यह है कि कृष्ण सूर्यस्वरूप हैं और जीव उनका किरणकरण है । कृष्ण महेश्वर हैं और जीव उनका नित्यसेवक है । कृष्णधाम परब्रह्म या गोलोक साक्षात् चिन्मय धाम हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । वही चिन्मय धाम—वैकुण्ठ, चिज्जगत आदि नामोंसे वरण नियमित किया जाता है । वाजसनेय उपनिषदमें कृष्ण स्वरूपका शुद्ध चिन्मयत्व दिखलाया गया है । इन्हीं परमेश्वर

परमब्रह्मरूप श्रीकृष्णकी नित्य शक्तिके विषयमें इवेताश्वतर उपनिषदमें उल्लेख है^१। भक्ति चिद-रस है—इस विषयमें मुण्डकोपनिषदमें इस प्रकार लिखा है कि कृष्ण ही समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप है, ऐसा जानकर विद्वान् व्यक्ति अतिवाद—शुद्ध ज्ञान और तकं को छोड़कर आत्म-कीड़ होते हैं^२। शुद्धज्ञान द्वारा उनको जानकर धीर पुरुष प्रज्ञा अर्थात् शुद्ध भक्तिका अनुशीलन करते हैं। ऐसा जो करते हैं, वे ही ब्राह्मण हैं। जो उनको जाने विना इस लोकका परित्याग करते हैं, वे कृपण हैं अर्थात् शोचनीय हैं। जो ब्रह्मको जानकर चले जाते हैं, वे ब्राह्मण हैं अर्थात् कृष्णभक्त वैष्णव हैं^३। भक्तिका स्वरूप इसी प्रकार प्रदर्शित हुआ है। हे मैत्रेयि ! आत्मा ही द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है, मन्तव्य है तथा उपासनीय है। वह आत्मा देखे जाने पर, सुने जाने पर, ध्यान

किये जाने पर तथा उपलब्धिपूर्वक जान लिये जाने पर सब कुछ जान लिया जाता है। वह आत्मा (कृष्ण) पुत्रसे भी अधिक प्रिय है, धनसे भी बहुकर प्रिय है; क्योंकि वह सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। जितने काम हैं, वे सब प्रिय नहीं होते। आत्मकाम होनेसे सब विषय प्रिय होते हैं^४। अतएव कृष्णके साथ जीवका जो नित्यसुख-सम्बन्ध है, उसीका नाम प्रेम है। प्रेम पूर्ण चित्तस्वरूप तत्त्व है।

इस हृष्यमान जड़ जगत्के साथ चित्ततत्त्व का यथार्थ सम्बन्ध क्या है ? यथार्थ सम्बन्ध ज्ञात होने पर भक्तिरूप प्रज्ञाका उदय होता है। चित्त-तत्त्वका अनुसन्धान करने जाकर हम लोग अनेक समय भ्रान्त हो पड़ते हैं। अधिक युक्ति और तकं का अवलम्बन करते हुए हम स्थिर करते हैं कि चित्त-तत्त्व जड़ तत्त्व के विपरीत कोई तत्त्व होगा। युक्तिपर अधिक-

नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहुनां विदधाति कामान् । (कठ.)

व्याम् प्रपद्ये । (ऋग्वेदम्)

१. परास्य भक्तिविद्येव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्षिया च ।
२. प्राणो ह्येष यः सर्वभूतेविभाति विजानन विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मकीड़ आत्मरतिः क्रियावानेषु ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।

३. तमेवधीरो विजाय प्रज्ञा कुर्वीत ब्राह्मणः । एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रेति
न कृपणोऽय एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रेति न ब्राह्मणः ।—(वृहदारण्यक)

४. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिष्यासितव्यः मैत्रेयात्मनि खल्वरे हृषे
भूते मते विजाते इदं सर्वं विदितम् । तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोज्यस्मात् सर्वस्मात्
अन्तरतरं यदयं आत्मा । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मानस्तु कामाय सर्वं
प्रियं भवति ।—(वृहदारण्यक)

तर निर्भर रहकर अपनी उक्त मान्यताकी पुष्टि के लिये हम जितना ही आगे बढ़ते हैं, हम चिद् रसस्वरूप परमतत्त्वसे बहुत दूर होकर एक अस्फुट चिदाभावरूप अमध्येण्ठ अध्यात्मिक ब्रह्म की कल्पना करके निश्चन्त हो जाते हैं। चिन्मात्र ब्रह्मकी कल्पना हुई। तब ब्रह्म निराकार, निविकार, निरवयव, गुणशून्य और प्रेमशून्य एक आकाश कुमुमकी भाँति अनिवंचनीय वस्तु के रूपमें लक्षित होते हैं। हम लोग उस चिन्मात्रके गुण-क्रिया-रूप, नाम आदि जानने में असमर्थ होकर निष्कर्मताको लाभ करते हैं। इसीलिये इस शुष्क ज्ञानके द्वारा इस जगतमें जीवोंको भहान बलेश प्राप्त होता है। व्यास नारद संवादमें इसकी पुष्टि होती है^१।

चिद्-विलास

शुद्ध चिदाभास रूपमें प्रतिभात चिन्मात्र ब्रह्ममें आबद्ध रहनेसे परब्रह्मके चिद्-विलासकी कदापि उपलब्धि नहीं हो सकती—इसमें कोई सन्देह की बात नहीं। बन्धुओं ! इससे और आगे की ओर बढ़ें। चिन्मात्र प्रतिभा को भेद कर चिन्मय धारमें प्रवेश करें। वहाँ परब्रह्म

और उनका चिद्-विलास आकर्षण पायेंगे। उस दशामें अखण्ड ब्रह्म रस क्या है? उसका रसास्वादन कर सकेंगे। शुष्क काष्ठ की भाँति आत्मा की अबोगति और न करें।^२

मुण्डकोपनिषदमें यह कहा गया है कि आत्माको जाननेवाले पुरुष ही प्रकृतिसे अतीत शुद्ध चिन्मय प्रकोष्ठमें विराजमान, रजोगुण आदिसे सर्वथा रहित निस्कल अर्थात् विशुद्ध परब्रह्म को जानते हैं। प्राकृत ज्योतिके बिना ही किसी अप्राकृत ज्योतिके द्वारा उनके नाम रूप-गुण और लीला आदिका प्रकाश होता है। सूर्य-चन्द्र, तारामण, विद्युत् और अग्नि इस जड़ जगतको प्रकाशित करते हैं। ये चिद्-धारामें जड़से अतीत जो चिदालोक है वही उस धारका प्रकाशक है। उसी चिदालोकके एक शुद्धतम अंशसे इस जगतके सूर्यचन्द्रादि प्रकाशित होकर जड़ जगतको प्रकाशित करते हैं। छान्दोग्योपनिषदके ब्रह्मपुर-वण्णनके प्रसंगमें इस विषयका विशद विवरण उपलब्ध होता है। चिद्-आलोक द्वारा प्रकाशित चिदजगत ही इस जड़

१. नैष्कर्म्यमध्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न वापितं कर्म यद्यप्यकारणम् ॥

२. हिरण्यं परे कोषे विरजं ब्रह्मनिष्कलम् ।

तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥

न तत्र सूर्यो भान्ति न चन्द्रतारकं नेमे विद्युतो भान्ति कुतोऽप्यमन्तः ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भान्ता सर्वंगिदं विभाति ॥

जगतका आदर्श है। वहाँ किसी प्रकारकी हेयता नहीं। उपादेयता ही वहाँका सुखजनक व्यापार है। यह जड़ जगत उसी चिन्मय जगत का एक प्रतिफलन मात्र है।

उसी आलोकके प्रतिफलित स्थूल सूर्योदि एवं सूक्ष्म प्रतिफलन ही मन, बुद्धि और अहंकार-गत जड़ ज्ञानालोक हैं। स्थूल इन्द्रियोंके द्वारा हम स्थूल सूर्य आदिको ज्योति मानते हैं। सूक्ष्म मन, बुद्धि और अहंकार-उद्भासित अष्टाङ्ग-योग-प्रणाली द्वारा जड़ ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं। यह सब जड़बद्ध जीवका नैसर्गिक कार्य है। श्रीनारदजीके उपदेशानुसार श्रीव्यासजीने

आत्मगत सहज समाधिमें परम पुरुषके नाम, रूप, गुण-लीलाको सम्पूर्णरूपमें देखा । पराशक्तिको छायाको—जिसे माया कहते हैं, परतत्त्वके अपाश्रयरूपमें देखा। उसी माया द्वारा मोहित हुए जीवरूप चित्ततत्त्वके अनर्थको भी वे अवगत हुए। तथा यह भी अवगत हुए कि जीव भक्तियोगरूपी सहज समाधिके द्वारा पुनः स्वरूपको प्राप्त होकर भगवानकी सेवाको पुनः प्राप्त होते हैं। ऐसा जान कर उन्होंने भगवानकी चिल्लीला-प्रकाशक श्रीमद्भागवत ग्रन्थका प्रकाश किया।

(क्रमशः)

१. भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रगिणहितेऽमले । अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाच्च तद्वपाश्रयाम् ॥
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं विगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत् कृतचाभिपच्छते ॥
अनर्थोपशमं साक्षादभक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतो विद्वांश्चके सात्वतसंहिताम् ॥

(भा. ११७।४-६)

श्रीवेदान्त चतुष्पाठीके छात्रोंकी सफलता

हम अत्यन्त आनन्दके साथ यह सूचित करते हैं कि श्री-श्रीहरिनामामूल व्याकरणकी उपाधि-परीक्षामें विद्विष्टस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त उद्घवमन्थी महाराज, आद्य-परीक्षामें श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीनिकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, और श्रीगौरहरि ब्रह्मचारी आदि छात्रोंने (सभी द्वितीय श्रेणीमें) उत्तीर्ण होकर समितिके गौरवको उज्ज्वल किया है।

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-२८)

श्रीवृन्दावन धाममें श्रीकृष्णकी प्रकट और अप्रकट—दोनों ही लीलाएँ नित्य विद्यमान हैं। एक ही श्रीकृष्ण लीलाके लिए बहुतसे रूपोंमें प्रकाशित होते हैं; उनके धाममें लीलाधिष्ठान होनेके कारण धाम भी बहुत प्रकारसे प्रकाशित होता है। किन्तु इससे एक लीलास्थान द्वारा दूसरे लीलास्थान आवृत नहीं होते। प्रकट लीलामें भी सभी लोलाएँ परस्पर न मिलकर विशेष सुन्दरता और सामझौस्यके साथ एक साथ रह सकती हैं। धामके सम्बन्धमें ऐसी विचित्रता देखनेमें आती है। जैसे केवल बारह योजन (४८ कोस) परिमाणायुक्त द्वारकापुरीमें दो कोस परिमाणायुक्त कोटि-गृह एक साथ बर्तमान हैं। अत्यन्त अल्प परिमाणायुक्त गोवर्द्धनके तल-प्रदेशमें (श्रीकृष्णके गोवर्द्धन-धारण लीलाके समय) ब्रह्मा जोने देखा कि श्रीवृन्दावनके वृक्ष-लता-तृण-पशु-पक्षी आदि यथायोग्य स्थानोंमें रहने पर भी उसमें अनन्त ब्रह्माण्डादि अनन्त वस्तुएँ समायी हुई हैं। श्रीनारदजीने योगमायाके बैमवका श्रीद्वारकापुरीमें दर्शन किया। उन्होंने देखा कि एक ही साथ प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन और सायंकालीन लीलाओंका मिलन अथवा समावेश हुआ है।

सभी धामोंमें ही इस प्रकारके विचित्र लीलासमाधानके लिए प्रकाशभेदका उदय हुआ करता है। श्रीवृन्दावनके प्रकाशभेद समूहकी बातका विश्लेषण यहाँ किया जा रहा है। अप्रकट लीलागत प्रकाशभेदके सम्बन्धमें यामलमें श्रीशिव-गौरी सम्बादमें श्रीशिवजी कहते हैं—हे गौरि ! श्रीवृन्दावनके प्रत्येक पथ-पथमें रत्नमय अङ्गयुक्त कोटि-कोटि कल्पवृक्ष विद्यमान हैं। उनमेंसे कुछ वृक्ष कोटि पूर्णचन्द्रकी किरणों द्वारा अत्यन्त उज्ज्वल हैं। कुछ वृक्ष रात्रिके अन्तमें नये उदित सूर्यके प्रकाशकी तरह अत्यन्त प्रकाशमान हैं। कुछ वृक्ष इनसे भी अधिक दीपिशाली हैं। उन सभी वृक्षोंकी कान्ति सुवर्णनिर्मित कलीकी तरह है। जिस फल-फूलको जिस समय दूँढ़ा जाय, उसी समय वृन्दावनके सभी वृक्ष उन-उन फल-फूलोंको उत्पन्न करते हैं। ब्रह्म संहितामें कहा गया है—

“ब्रिः कान्तः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चन्तामणि—गणमयी तोषममृतम् ।
कथा गानं नात्य गमनमपि वंशीप्रियसलो
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥
स यत्र क्षीरादिः खव त सुरभीम्यद्व सुमहान्
नमेषाद्वाल्यो वा व्रजति न हि पत्रापि समयः ।

भजे इवेतद्वीपं तमहामिह गोलोकमिति यं
विदम्भत्स्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये ॥”

अर्थात् जहाँ लक्ष्मीगण कान्ताएँ हैं, परम-
पुरुष (श्रीकृष्ण) ही एकमात्र कान्त है, वृक्ष
सभी कल्पवृक्ष हैं, भूमि चिन्तामणि समूह
द्वारा आवृत है, जल ही अमृत है, बातचीत ही
गान है, गमन ही नाट्य (नृत्य) है, वंशी ही
प्रियसखी (या प्रियदूती) है, ज्योति भी परम
आस्वाद, अप्राकृत और चिदानन्द है, सभी
सुरभियों (कामधेनुसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ गोद्यों)
से अत्यन्त महान् क्षीरसमुद्र प्रवाहित होता
है, जहाँ एक निमेष काल (एक पलक गिरने
का समय) भी वेकार नहीं जाता, उस इवेत-
द्वीपका मैं भजन करता हूँ ; उसे ही इस जगत्
में अत्यन्त थोड़ेसे साधुगण (परम वैष्णव
लोग) ‘गोलोक’के रूपमें अनुभव करते हैं ।

वह धाम यद्यपि स्वप्रकाश है, तथापि
लौकिक लीला माधुर्यके निर्वाहि के लिए महा-
प्रलयमें भी (प्राकृतिक प्रलय—जिस प्रलयमें
समस्त ब्रह्माण्डका लय होता है) ग्रविनश्वर
सूर्यादि रूप ज्योति वहाँ नित्य वर्तमान हैं ।
वह ज्योति और गोलोकवासियोंके आस्वाद
वस्तुमात्र ही चिदानन्दरूप परमतत्त्व वस्तु
है, प्राकृत नहीं हैं । वहाँ चन्द्र-सूर्यादिकी विल-
क्षणरूपसे स्थिति है । श्रीगौतमीय तन्त्रमें
'समानोदित चन्द्रार्क'—ऐसा एक कथन है ।
प्रत्येक रातमें ही चन्द्रका उदय होनेके कारण
समानोदित चन्द्र कहा गया है (इसी प्रकार

सूर्य भी प्रतिदिन उदित होता है) । ‘यत्रापि’
के ‘अपि’ शब्दका परवर्ती ‘भजे इवेतद्वीपं’
इत्यादि इलोकके सहित अन्वय करना होगा ।
अर्थात् ब्रह्माजीने पहले कहा है—“गोविन्द-
मादिपुरुषं तमहं भजामि” (मैं आदि पुरुष
गोविन्दका भजन करता हूँ) । उसके पश्चात्
कहते हैं—“इवेतद्वीपमपि भजे” (मैं इवेतद्वीप
का भी भजन करता हूँ) । इससे यह तात्पर्य
निकलता है कि श्रीगोविन्द और श्रीगोविन्द
धाम दोनों ही भजनीय हैं । वे सभी गोलोक-
वासी लीलारसमें अत्यन्त आविष्ट होनेके कारण
उन्हें समयका ध्यान नहीं रहता । नहीं तो,
यदि कालका परिवर्त्तन नहीं हो, तो पूर्वपर
लीलाओंकी स्वरूप-हानि या सौंदर्य-हानि
होती है । जिस प्रकारसे प्रातःकालमें जागरण,
मुख-प्रक्षालनादि प्रातःलीलाएँ होती हैं;
संध्यामें (गोधूलि समयमें) गोष्ठ-गमन आदि
लीलाएँ होती हैं । यदि वहाँ समयका परि-
वर्त्तन न हो, तो विभिन्न कालोचित लीलाओं
का समाधान नहीं हो सकता । तब वह
परिवर्त्तन लीलाके अनुसार होता है ।

‘इवेतद्वीप’ का अर्थ—इवेत अर्थात् शुभ्र,
निर्मल, दोषरहित;द्वीप जिस प्रकार समुद्रके बीच
में रहकर पृथिवीके अन्य स्थानोंसे अलग रहता
है, उसी प्रकार अन्य सङ्ग्रहित या सब स्थानों
से शेष । जिस प्रकार सरोवरमें जल-सम्पर्कसे
रहित होकर कमलका निवास है, उसी प्रकार
गोलोक भी प्राकृत सम्पर्करहित होकर पृथिवी
में वर्तमान है ।

नारद पञ्चरात्रमें 'श्रुति-विद्या सम्बाद' में ईवेतद्वीपकी शोभा इस प्रकारसे वर्णित है— “उसकी चारों दिशाएँ, चारों कोण, उद्धंव् (ऊपर) और अधः (नीचे)-ये दर्शों दिशाओंमें दस लोकपालोंका निवास है । वहाँका जल शोरामृत-समुद्र है; वृक्ष सभी कल्पवृक्ष हैं, भूमि चिन्तामणिमयी है । वहाँ लाखों क्रीड़ा पक्षियाँ हैं, बहुत प्रकारके सुरभिसमूह, नाना प्रकारसे चित्र - विचित्रित रासमण्डल-भूमि, केलि-निकुञ्ज समूह, नाना प्रकारके सौरुद्धस्थल वहाँ शोभा पा रहे हैं । प्राचीर-छत्रके रत्न-समूह शेषदेवके फणोंकी तरह प्रकाशमान हो रहे हैं । उस परकोटा-समूहके शिरोरत्न-समूहका अनुल द्युतियुक्त वैभव ब्रह्मकी तरह प्रकाश पा रहा है । उसकी शोभाका कौन वर्णन कर सकता है ?”

अतएव श्रीवृन्दावनकी अप्रकट लीलानुगत प्रकाश ही गोलोक है । प्रकटलीलानुगत प्रकाशमें चिन्मय वृन्दावन धामका दर्शन प्राकृत प्रदेशकी तरह होता है । ऐसा दर्शन श्रीभगवान की तरह स्वेच्छापूर्वक लौकिक लीला विशेषके कारण होता है । अर्थात् भगवान जिस प्रकार स्वेच्छाक्रमसे लौकिक लीला अङ्गीकार करते हुए किसी-किसी लोकचेष्टाका प्रकाश करते हैं, उनका धाम भी उसी प्रकार नरलोकमें प्रकट होने के कारण लौकिक लीलाविशेष अङ्गीकार कर जागतिक प्रदेशमें जो सभी रीतियाँ लक्षित होती हैं, वैसी रीतियोंको प्रकाशित करता है । जिस प्रकार वृन्दावनके किसी स्थानमें यमुना

की पुरानी धारा टूट रही है, किसी स्थानमें नयी तटीय-भूमि बन रही है, कहीं बनकी सृष्टि हो रही है, और कहीं बन उजाड़-भूमिमें परिणाम हो रहा है; लीलाके उत्कर्षके लिए धाम में ये सभी परिवर्तन देखे जाते हैं, न कि काल-कृत परिणाम द्वारा । क्योंकि दृश्यमान इन सभी धामोंका प्रपञ्चातीत्व आदि गुण भगवत् साहश्य (प्रपञ्चातीत भगवानकी लीलाके लिए प्रापञ्चिक चेष्टा) की तरह श्रुति - स्मृतिके वचनों द्वारा प्रमाणित किए गए हैं । आदिवाराह पुराणमें कहा गया है—

वसन्ते ये भथुरायां विष्णुरूपा हि ते जनु ।
अज्ञानात्तात्र पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

अर्थात् जो व्यक्ति मधुरामें वास करते हैं, वे निश्चय ही विष्णुरूपधारी हैं; मूर्ख या अज्ञ व्यक्ति उन्हें देख नहीं पाते, किन्तु उन्हें केवल ज्ञाननेत्र सम्पन्न व्यक्ति ही देख पाते हैं । श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई श्रीबलदेवजीसे कहते हैं— अहो अमी देववरामराच्चितं

पादाम्बुजं ते सुमनः फलाहंणम् ।
नमस्युपादाय शिलाभिरात्मन—

स्तुमोऽप्यहस्यं तरुजन्म यत्कृतम् ॥
(मा. १०।१५।५)

अर्थात् “हे देववर ! जिन्होंने अपने वृक्ष-जन्मके मूलकारण स्वरूप अज्ञानके नाशके लिए अपने अग्रभागमें पुष्पफलरूप पूजा के द्रव्य समूह ग्रहण किए हैं, वे ही वृन्दावनस्थ सभी वृक्ष देवताओं द्वारा भी पूज्य आपके

श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम कर रहे हैं।” कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीवृन्दावनके वृक्ष सभीकी बात स्मरण या अवण करनेसे या उनका दर्शन करनेसे सांसारिक व्यक्तियोंका अज्ञान नष्ट हो जायगा; अतएव जिन्होंने वृन्दावनमें वृक्षत्व प्राप्त किया है, वे इस तरहसे श्रीबलदेवके चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं। अथवा श्रीभगवानके चरणकमलोंमें फूल-फल समर्पण कर जिन्हें वृन्दावनमें वृक्ष-योनि प्राप्त हुई है, वे पुनः उन फूल-फलको अर्पण कर श्रीबलदेवजीके चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं।

सप्तश्चाभितः पश्यन् दिशोऽपदयत् पुरः स्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्गुमाकीर्णं समाप्तियम् ॥
यत्र नंसगंदुर्बर्णः सहासन् नृ—मृगावयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुद्गतर्थकादिकम् ॥

(भा. १०।१३।४४-६०)

ब्रह्माजीने चारों ओर अपनी नेत्रदृष्टि द्वारा निरीक्षण किया; उन्होंने हठात् सामने देखा कि जनसाधारणकी जीविका निवाहके उपयुक्त सभी वृक्षों द्वारा परिपूर्ण, और सब

ऋतुओंमें ही परम आनन्ददायक श्रीवृन्दावन धाम प्रकाश पा रहा है। वहाँ परस्पर स्वाभाविक और अनिवार्य रूपसे शत्रुता भावापन्न मनुष्य, पशु, सिंह आदि प्राणी परम मित्रकी तरह निवास कर रहे हैं और उस भगवानके निवास स्थानसे कोध, लोभ, मोह आदि दुर्भाव सम्पूर्ण रूपसे दूर हो गये हैं।

समाप्तियका अर्थ—सम-आत्माराम व्यक्तियों के भी या सम-सहचरके—श्रीभगवानके भी, आ—सर्वप्रकारसे—सर्वांशसे प्रिय। इस इलोक द्वारा वृन्दावनके माया-अंशत्वका निषेध कर सबकी अपेक्षा प्रचुर—आनन्दप्रदायकत्व दिखलाया गया है। क्योंकि मायिक स्वभाव-युक्त वस्तु आत्मारामगण या भगवानको रिभा नहीं सकती। श्रीवृन्दावन धाम सब प्रकारसे उनका प्रिय होनेके कारण सर्वांशसे ही अप्राकृत और परमानन्दमय है।

—त्रिविहिन्दस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसूक्ष्म
धीती महाराज

श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

[वर्ष १४, संलग्न ३-४, पृष्ठ ७५ से आगे]

ब्रजबलभ श्रीकृष्णके अभिन्न-हृदय प्रेमी भक्त उद्धव मनको आकर्षण करनेवालीं, परमो-न्मादिनी, मधुरसे भी सुमधुर अपने प्रिय सखा-की आनन्द बढ़ानेवालीं लीलाकथाओं द्वारा अपनी रसनाको साथें करते हुए नन्दगाँवमें निवास करने लगे। वे परम पूजनीया, परम सौभाग्यशालिनी ब्रजरमणियोंके चरणरजको प्राप्त कर बड़ा आनन्द अनुभव करते थे। इस तरह कई महीने बीत गये। उन्होंने ब्रजरमणियों की विरहाग्नि जनित ज्वालाको शान्त किया। अपने सुचतुर बचनों द्वारा उनके आसुओंके प्रवाह को रोक दिया। फिर भी उन्हें यथार्थ सफलता न मिल सकी। वे गोपियोंकी भाव-माधुरिमा से मोहित हो गये। कहाँ उद्धवजी चले थे गोपियोंको सान्त्वना देने, कहाँ वे स्वयं उनके भाव समुद्रके अगाध तरंगोंमें गोते खाने लगे!

उद्धवजीके चले जानेके बहुत समय बीत जाने पर भी गोपियोंकी अवस्था ज्यों की त्यों ही रही; वे श्रीकृष्ण विरहकी तीव्रताके कारण उद्वेग, प्रलाप, उन्माद आदि दस अवस्थाओंमें अपना समय बिता रहीं थीं। स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति-सभी अवस्थाओंमें ही वे कृष्णका साम्राज्य अनुभव करती थीं। उन लोगोंके शरीरमें नाना

प्रकारके भावोंका उदय होता रहता था। वे श्रीकृष्णमें ही तन्मय थीं।

इस तरह कई वर्ष बीत गए। पूर्ण सूर्य-प्रहणका समय भी उपस्थित हुआ। इस परम पुनीत अवसर पर स्यमन्तक पञ्चकतीर्थ घर्म-क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें भारतवर्षके कोने-कोनेसे बहुतसे नर-नारी, साधु-सज्जन आदि पधारे। ब्रजबासियोंको भी वहाँ जानेकी अभिलाषा हुई।

गोपियोंने सुन रखा था कि उनके प्राण-प्यारे श्रीकृष्ण और बलरामजी यादवों तथा अपने परिवारके साथ वहाँ पधारेंगे। इससे उन लोगोंकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। वे वर्षों से बिछुड़े अपने हृदय-सर्वस्व श्रीकृष्णके मुखार-विन्दके दर्शनके लिए बड़ी उतावली हो गईं।

वात्सल्य रसकी मूर्त्तिमती स्वरूपिणी श्रीमती यशोदाजी और ममता और स्नेहके महोदधि श्रीनन्द महाराज, श्रीकृष्णके प्राण-प्यारे बचपनके साथी सखा ग्वाल-बाल, अनुराग रागरञ्जिता श्रीकृष्णकगतप्राणा ब्रजललनाएँ आदि सभी ही अपने-अपने शकटों पर बैठकर चल पड़े।

वहाँ श्रीकृष्ण और बलरामजीने अपने पिता वसुदेव, माताओं (रोहिणीजी और देवकीजी), रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियों, बालकों

तथा यादवोंके साथ कुरुक्षेत्रमें पदार्पण किया । वहाँ देश-देशके करोड़ों राजा लोग तथा सैन्य सामन्त इत्यादि भी आये हुए थे ।

सभी बन्धु-बान्धोंका परस्पर वहाँ मिलन हुआ । पांडव लोग तथा कुन्ती आदि श्रीवसुदेव जी तथा यादवों से मिले । नन्द महाराज आदि गोपोंके दर्शन कर श्रीवसुदेवजी, उग्रसेन आदि यादवोंको परमानन्द प्राप्त हुआ । सभी ने एक दूसरेका गाढ़ आलिङ्गन किया । श्रीकृष्ण और बलरामजी ने यशोदा और नन्द महाराजको हृदयसे लगाया और उन दोनोंके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम किया । दोनों भाईयोंका गला हँध गया । वे कुछ कह न सके और आँखों से आँसूओंकी धारा बहने लगी ।

नन्ददावा तथा यशोदाजीने दोनों बालकों को गोदमें बिठाकर माथा सूँधा और भुजाओं से गाढ़ालिङ्गन किया । उनके हृदयसे दीर्घ काल तक न मिलनेका दुःख पूरी तरह मिट गया ।

रोहिणीजी और देवकीजीने यशोदाजीको अपने अंकमें भर लिया और यशोदाजीके ऐम का स्मरण कर कहने लगीं—हे यशोदाजी ! आपने तथा नन्द महाराजने हम लोगोंके साथ जो प्रीतिपूर्ण व्यवहार किया है, वह चिरस्मरणीय है । उसके ऋणसे हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं । जन्म लेनेके पश्चात् इन्हें बरोहरके रूपमें आप लोगोंके पास रख द्योड़ा था । उस समय आप लोगों ने इन दोनों बालकोंको अपने बच्चे समझकर पलकशी

पुतलियोंकी तरह रक्षा की थी । आप दोनों ने इन बालकोंके लिए क्या नहीं किया ? आप लोग ही वास्तवमें इन बालकोंके मातापिता हैं ।

श्रीकृष्ण दर्शनकी लालसासे व्याकुल गोपियाँ कृष्णके पास उपस्थित हुईं । वे श्रीकृष्णको देखते ही रह गयीं ।

गोप्यञ्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
पल्प्रेक्षसे हृशिषु पक्षमकृतं शपन्ति ।
दग्भिहृदीकृतमसं परित्यन्तं सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥
(मा० १०।८।३६)

गोपियोंने अपने चिरवाचित प्राणप्यारे श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त किया; किन्तु उनके दर्शनके समय नेत्रोंकी पलकें गिर पड़तीं । इससे उनके एकटक दर्शन में बाधा पड़ने लगी । वे कुँद होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको शाप देने लगीं । इसके पश्चात् वे नेत्रोंके मार्गसे प्रियतम श्रीकृष्णको हृदयमें प्रवेश कराकर यथेच्छापूर्वक उनका बारम्बार आलिङ्गन करने लगीं । इस तरह वे नित्यध्यानस्थ योगियोंके लिए दुर्लभ, श्रीकृष्ण तन्मयत्व प्राप्त हो गयीं ।

मगवांस्तात्तथाभूता विविक्त उपसङ्गतः ।
आशिलध्यानामर्यं पृष्ठ्वा प्रहसन्निवसत्वीत् ॥
अपि स्मरथ नः सल्यः स्वानमर्याच्चिकीर्यथा ।
गतांश्चरायितान् शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥
अप्यवध्यायथास्मान् हिमतकृतज्ञाविशद्गुया ।
नूनं भूतानि मगवान् पुनर्त्ति विषुनत्ति च ॥
(मा. १०।८।४०-४२)

जब भगवानने यह देखा कि व्रजबालाएँ मुझसे तादात्म्यको प्राप्त होकर विहृल हो रही हैं, तब वे एकान्तमें उन लोगोंके पास पहुँचकर उन्हें बड़े ही प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाया और कुशल समाचार पूछते हुए हँसते-हँसते कहने लगे—

—मेरी प्यारी सखियों ! हम लोग अपने हवजन बन्धु-बान्धवोंका कार्य सिद्ध करनेके लिए तुम जैसी अपूर्व प्रेयसियोंको छोड़कर मथुरा चले आये और शत्रुओंको विनाश करने में सम्मूर्ख रूपसे उलझ गये। क्या इसलिए मुझे दीर्घकाल तक न देखकर मुझे भूल तो नहीं गई हो ?

मेरी प्रिय भाग्यवतियों ! कहीं तुम लोगों के मनमें यह आशंका तो नहीं है कि मैं कृतज्ञ हूँ ? इसलिए मेरी अवज्ञा तो नहीं कर रही हौ ? परन्तु यह बात मनमें रखना चाहिए कि निस्सन्देह भगवान ही प्राणियोंको मिलाते हैं और उनमें वियोग कराते हैं; इसनिये हमारा दोष मत लेना ।

वायुर्यथा धनानीकं तृणं तूलं रजासि च ।
संयोज्याक्षिप्ते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत ॥
मयि नक्षिहि भूतानामसृतत्वाय कल्पते ।
दिव्या यदासीन्मत्स्नेहो मवतीनां मदापनः ॥

(मा० १०।८।२।४३-४४)

जैसे वायु मेघोंके समूह, तृण, रुई, और धूलिकणोंको एक साथ मिलाकर फिर उन्हें अलग करता है, वैसे ही सभी पदार्थोंके बनाने

वाले भगवान सभी प्राणियोंमें परस्पर संयोग और वियोग इच्छानुसार करते रहते हैं ।

हे प्रियाओं ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम लोगोंको मेरा वह परम दुर्लभ प्रेम प्राप्त हो गया है जो मेरी प्राप्ति करानेवाला है। क्योंकि मेरे प्रति की गई प्रेमभक्ति प्राणियोंको अमृतन्त्र (नित्य शाश्वत परमानन्द) प्राप्त कराती है। मैं नितान्त तुम लोगोंके प्रेमाधीन हूँ और यह मेरा परम सौभाग्य है; तुम्हारा प्रेम मुझको तुम लोगोंके निकट जबदंस्ती आकर्षण कर तुम लोगोंके पास रख देता है ।

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।

भौतिकानां यथा चं वायुर्वायुज्योतिरङ्गना ॥

एवं हृतानि भूतानि भूतेष्वात्मनो ततः ।

उभयं यद्यथ परे पश्यतामात्मकरे ॥

(मा० १०।८।२।४५-४६)

हे प्राणप्यारी रमणियों ! जैसे जल, अग्नि, वायु और आकाशादि पञ्च महाभूत सभी भौतिक पदार्थों के आदि और अन्तमें वर्त्तमान हैं और परस्पर ओतप्रोत हैं, उसी प्रकार मैं भी सभी प्राणियोंका बनानेवाला और नाश करनेवाला हूँ। मैं अन्तर और बाहर सर्वत्र रहनेके कारण तुम लोग मुझे सर्वदा प्राप्त होकर अवस्थान कर रही हो ।

जिस प्रकार सभी भौतिक पदार्थ अपने मूलकारणरूप पञ्च महाभूतोंमें वर्त्तमान हैं, उसी प्रकार पञ्च महाभूत सूक्ष्मरूपसे अपने मूलकारणरूप पञ्च तन्मात्राओंमें वर्त्तमान हैं;

किन्तु आत्मामें वे वर्तमान नहीं हैं। आत्मा भोक्ता रूपसे ही पञ्च महाभूतोंमें वर्तमान है, कारणरूपसे नहीं; परन्तु परिपूर्ण परमात्मारूपी मुझमें पञ्च महाभूत और भीतिक भोग्य पदार्थसमूह तथा भोक्ता आत्मा—दोनों ही वर्तमान हैं। तुम लोग मुझमें ऐसा दर्शन करो।

अध्यात्मशिक्षा गोप्य एव कृष्णेन शिक्षिता ।

तदनुस्मरणात्मवस्त - जीवकोशास्तमध्यगत् ॥

(भा० १०॥२॥४७)

इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवानकी अध्यात्मशिक्षा (अपने स्वरूपका ज्ञान) प्राप्त कर गोपियाँ अनुकरण उन्हींका ध्यान करने लगीं तथा स्मरण करने लगीं। उनके जीवनकुमुदका अन्तर्भाग नष्ट हो जानेके कारण अर्थात् उनकी प्राप्तिकी आशासे किञ्चित्मात्र जीवनकी रक्षा होनेके कारण अन्तमें वे श्रीकृष्णको ही प्राप्त हुईं।

संसारकी आसक्ति या माया सम्बन्धरहिता गोपियोंने भावोन्मादिनी होकर श्रीकृष्णसे ऐसी प्रार्थना की थी—

आहुश्च ते नलिननाम पदारविन्दं
योगेश्वरंहृदि विचिन्त्यमगाधबोधः ।

संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं

गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥

(भा० १०॥२॥४८)

हे कमलनाम ! हे श्रीकृष्ण ! अगाध ज्ञान-सम्पन्न शिव, ब्रह्मादि बड़े-बड़े योगेश्वर लोग हृदयकमलमें आपके चरणकमलोंका सदा सर्वदा ध्यान करते रहते हैं। जो व्यक्ति संसारमें, जो अन्धेरे कुए की तरह है, गिरे हुए हैं, उनको निकलनेका एकमात्र अवलम्बन आपके चरण-कमल युगल ही हैं। आप हम लोगोंके ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे हम गृहसेविनी अवलाशों के हृदयमें भी आपके चरणयुगलका सदा सर्वदा ध्यान और स्मरण होता रहें। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि हे कृष्ण ! हम गोपियाँ वृन्दावनको छोड़नेमें असमर्थ हैं। अतएव वृन्दावनमें अगर आप मुरली धारण कर वन्यवेशसे हम लोगोंके साथ लीला-विलास करें, तब ही हमें पूर्ण मुखकी प्राप्ति होगी। इसलिए आप वृन्दावनमें कृपा कर पधारकर आपके दर्शनोंसे हमारा सन्ताप दूर करें; अन्यथा केवल आपके स्मरण या आत्मज्ञानसे हमारा सन्ताप दूर नहीं हो सकता।

—वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शाखी साहित्यरत्न

प्रभु, मेरी विनति सुन लीजै

भक्ति बिना जो कृपा न करते, तो हीं आस न करती ।
 बहुत पतित उद्धार किए तुम, हीं तिन को अनुसरती ॥
 मुख मृदु बचन जानि मति जानहु, सुदृढं पंथ पग धरती ।
 कर्म-बासना छाँड़ि कबहुं नहि, साप पाप आचरती ॥
 मुजन - वेष - रचना प्रति जनमनि, आयो पर - घन हरती ।
 धर्म - धुजा, अंतर कछु नाहि, लोक दिखावत फिरती ॥
 परतिय - रति - अभिलाष निसा - दिन-मन पिटरी लै भरती ।
 दुर्मंति, अति अभिमान, ज्ञान बिन सब साधन तें टरती ॥
 उदर-धर्यं चोरी - हिसा करि, मित्र - बधु सौं लरती ।
 रसना - स्वाद - शिथिल, लंपट हूँ, अघटित भोजन करती ॥
 यह ब्योहार लिखाइ रात - दिन, पूनि जीतौ पुनि मरतौ ।
 रवि - सुत - दूत वारि नहि सकते, कपट घनौ उर बरती ॥
 सांचु-सोल, सद्रुप पुरुष को, अपजस बहु उच्चरती ।
 औघड़ - असत - कुचीलनि सौं मिलि माया - जल मैं तरती ॥
 कवहुँक राज - मान - मद - पूरण, कालहु तें नहि डरती ।
 मिथ्यावाद आप - जस सुनि - सुनि, मूछहिंपकरि अकरती ॥
 इहि विधि उच्च - अनुच तन धरि - धरि, देश-बिदेस बिचरती ।
 तहें सुख मानि, बिसारि नाथ पद, अपने रंग बिहरती ॥
 अब मोहि राखि लेहु भनमोहन, अधम-अंग पद परती ।
 खर-कूकर की नाईं मानि सुख, विषय अगिनि मैं जरती ॥
 तुम-गुन की जैसे मिति नाहिन, हीं अघ कोटि बिचरती ।
 तुम्हैं - हमें प्रति बाद भए, ते गौरव काकौ गरती ॥
 मोतें कछु न उबरी हरि जू, आयो चढ़त उतरती ।
 अजहूं 'मूर' पतित पद तजतो, जो औरहु निस्तरती ॥

श्रीभागवत-पत्रिकाके प्रेमी पाठकोंसे नम्र-निवेदन

श्रीभागवत-पत्रिकाने भगवत्कृपासे अपने १३ वर्ष पूर्ण कर लिये हैं। श्रीभागवत-पत्रिका अपने नवयोवन अर्थात् १४वें वर्षमें पदार्पण कर चुकी है। आप सज्जनों और महानुभावोंकी हार्दिक सहानुभूति और सहायता पर निर्भर रहकर ही श्रीभागवत-पत्रिकाका संचालन किया जा रहा है।

आजकल मनुष्य जीवन लक्ष्यहीनता और अनिश्चितताकी ओर बढ़ रहा है। आजकल प्रायः जनसाधारण व्यक्तियों और तथाकथित उच्चशिक्षित कहे जानेवाले व्यक्तियोंकी रुचि पारमार्थिक और आत्मकल्याणकारी साहित्यकी ओरसे क्रमशः हटकर इन्द्रियतर्पणमूलक और अद्वितीयापूर्ण साहित्यकी ओर ही अधिकतर रूपसे बढ़ रही है। यह बहुत ही खेद और चिन्ताका विषय है।

जगतके प्रायः अधिकांश व्यक्ति ही निरपेक्ष और कठोर सत्यका आदर नहीं करते। वे लोग असत्यताकी मृग-मरीचिकामें ही भ्रमण करना चाहते हैं। यह बड़े ही हर्ष और प्रशंसाकी बात है! कि ऐसी विषम परिस्थितिमें भी आप सज्जन लोग श्रीभागवत-पत्रिकाका नियमित रूपसे अध्ययन कर परमार्थ-जीवनकी ओर अधिक से अधिकतम रुचि ले रहे हैं। श्रीपत्रिकाका सुचारु संचालन, व्यवस्था और प्रकाशनादि कार्य आप महानुभावोंकी हार्दिक सहायता और सहानुभूति द्वारा ही पूर्णरूपसे सिद्ध सकते हैं।

अतएव हमारी आप सज्जनोंसे यही विनीत निवेदन है कि आप सज्जनोंके नाम पर श्रीभागवत पत्रिकाकी जितनी भी भिन्ना अभी तक बकाया हो, सो शीघ्रातिशीघ्र प्रेषित करनेकी कृपा करें और हम दीन-हीन व्यक्तियोंपर अनुग्रह प्रकाश करें। अन्यथा श्रीभागवत-पत्रिकाके सुचारु-संचालन और प्रकाशनमें विलम्ब और रुकावट आनेकी संभावना है।

आप सज्जन लोग यदि पत्रिकाके लिए उपयुक्त लेखादि भेज सकें, तो उत्तम रहेगा। आप लोगोंसे हमारी यह भी प्रार्थना है कि श्रीभागवत-पत्रिकाके कुछ नये ग्राहक बनाकर इस महान् कीर्तन-यज्ञमें हमें और भी उत्साहित और अनुप्राणित करें। इति

कार्याध्यक्ष

‘श्रीभागवत-पत्रिका’

श्रीदामोदरव्रत और श्रीश्री अन्नकूट महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें अन्यान्य वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीचातुर्मास्य व्रत और उसके अन्तर्गत २० आष्टमि, सोमवारसे लेकर १६ कार्तिक, मंगलवार तक श्रीदामोदरव्रत नियम सेवाका अनुष्ठान विधिपूर्वक समाप्त हुआ है। दामोदर व्रतके उपलक्ष्यमें सर्वत्र ही एक मास तक विधिपूर्वक समारोहके साथ श्रीविग्रह सेवा-पूजा, श्रीमद्भागवत और श्रीचत्त्वारितामृत आदि ग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन, संकीर्तन और भाषण हुए हैं। इस अनुष्ठानके अन्तर्गत सर्वत्र ही ५ कार्तिक, मंगलवारको श्रीगोवद्धन-पूजा और अन्नकूट महोत्सव और १५ कार्तिक, शुक्रवार को उत्थान एकादशीके दिन श्रीश्रीगौड़ीयकिशोरदास बाबाजी महाराजका विरह महोत्सव आदि विशेष समारोहपूर्वक सम्पन्न हुए हैं।

शोध ही संग्रह करें

[जैवधर्म (हिन्दी संस्करण)]

[सोलह पेजी २० × ३० आकार, ८०० पृष्ठोंकी सजिलद पुस्तक। भिक्षा—केवल दस रुपये]

जैवधर्म हिन्दी भाषामें वैद्यग्रन्थमेंके विशेषतः श्रीगौड़ीय वैद्यग्रन्थके परमोच्च दार्शनिक मिद्दान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सावेत्रिक, सावंकालिक तथा सावंजनिक नित्य सनातन धर्म—जैवधर्मका हृदयग्राही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद, उपनिषद, वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों, अद्वैत, महाभारत, पञ्चरात्र और गौड़ीय गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका सार सहज-सरल और हचिकर भाषामें उपन्यास प्रत्यालीसे गागरमें सायरकी भाँति भरा है।

उच्चकोटिके विद्वानोंने भी अनुवादको मूल ग्रन्थके समान ही भावपूर्ण और स्वाभाविक माना है। अतः पाठकों से विशेष अनुरोध है कि इस ग्रन्थ-रत्न का मंग्रह कर अवश्य अध्ययन करें।

मंगाने का पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

मूल लेखक—जगद् गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर